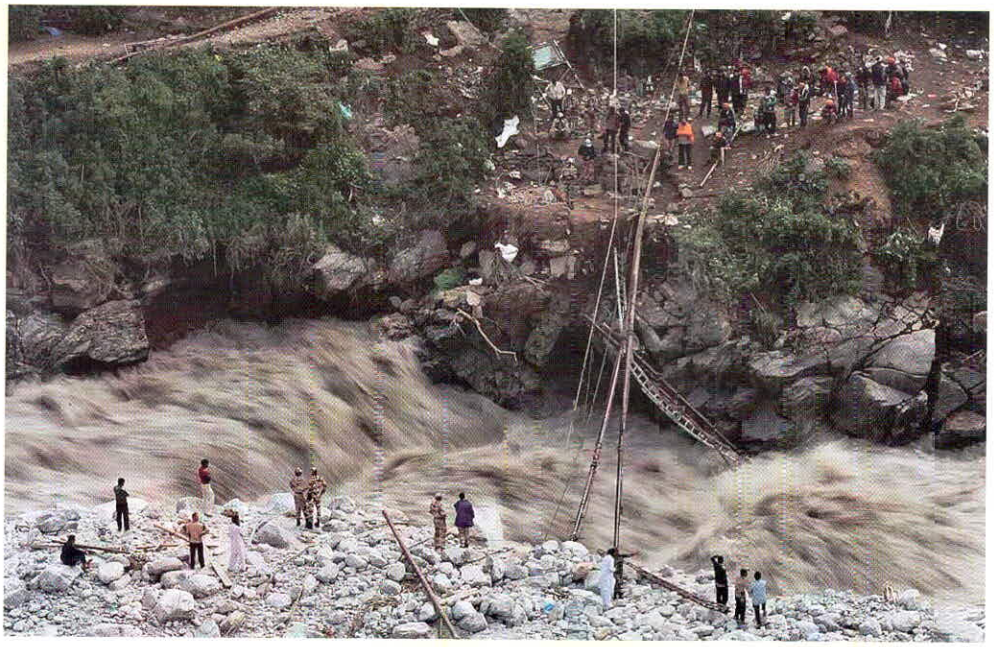

उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में बढ़ती प्राकृतिक आपदाएं

कारण तथा समाधान

शंकर प्रसाद तिवारी
'विनय'

माना कि आज विकास जरूरी है, मगर पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन उससे भी अधिक जरूरी है क्योंकि यह न सिर्फ हमारे बल्कि संपूर्ण जीव-जगत के अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न है। अगर उत्तराखण्ड में पर्यावरण तथा विकास को एक-दूसरे के पूरक के रूप में आगे बढ़ाना है तो 'पर्यावरण एवं विकास' से संबंधित ऐसी नीतियां बनानी पड़ेंगी, जो यहां की भौगोलिक स्थिति, पारिस्थितिकी तथा जैवविविधता के अनुकूल हों, साथ ही इन नीतियों का सफल क्रियान्वयन, प्रबंधन तथा मूल्यांकन करना भी बेहद जरूरी है।

यूं तो बिजली गिरना, तेज बारिश का होना, भू-स्खलन होना तथा बादल का फटना पहाड़ी एवं हिमालयी क्षेत्रों के लिए कोई नई बात नहीं है, मगर 16-17 जून, 2013 को उत्तराखंड के केदारनाथ धाम सहित तमाम अन्य क्षेत्रों में बादल फटने की घटनाओं से बाढ़ तथा तबाही का जो मंज़र पैदा हुआ, ऐसा शायद पहले कभी नहीं देखा गया था। प्रकृति का सर्वाधिक कहर केदारनाथ धाम में देखने को मिला जहां ग्लेशियर टूटने तथा बादल फटने की घटना के बाद अचानक आई बाढ़ ने 10 हजार से अधिक लोगों की जिंदगी लील ली।

हिमालय से उठने वाली यह सुनामी सिर्फ केदारनाथ तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि कई अन्य क्षेत्रों में भी बादल फटने तथा लगातार बारिश के रूप में कहर बनकर टूटी। इसका सर्वाधिक प्रकोप उत्तराखंड के चार पहाड़ी जिलों रुद्रप्रयाग, चमोली, उत्तरकाशी तथा पिथोरागढ़ को झेलना पड़ा। इन क्षेत्रों से निकलने वाली भागीरथी, मंदाकिनी, अलकनंदा, धौली, नंदाकिनी, भिलंगना, बिरही, पिण्डर और रामगंगा इत्यादि नदियों के कहर से इनके आस-पास बसे दर्जनों गांवों, कस्बों तथा शहरों का बड़ा रिहायशी भू-भाग जल-प्रलय में समा गया। उत्तरकाशी, हेमकुंड, गोविंदघाट, श्रीनगर गढ़वाल, अगस्त्यमुनि, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग, नंदप्रयाग, देवप्रयाग तथा चिन्यालीसौड़ इत्यादि शहरों का एक-तिहाई भाग जल समाधि ले चुका है। उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में लगातार बारिश तथा बादल फटने की घटनाएं अभी भी जारी हैं, राज्य के 43 फीसदी भू-भाग पर बसी

ऐसा शायद पहले कभी नहीं देखा गया था

तकरीबन 22 प्रतिशत आबादी इस आपदा से प्रभावित है। लगभग 5000 से अधिक घर तथा 1000 से अधिक सरकारी तथा व्यावसायिक इमारतें आपदा की भेंट चढ़ चुकी हैं, 10 लाख से अधिक लोगों का आशियाना उजड़ चुका है और अधिकांश प्रभावित क्षेत्र सड़क-परिवहन-संचार तथा विद्युत जैसी बुनियादी सुविधाओं से कटे हुए हैं।

उत्तराखंड के इतिहास में संभवतः यह पहला मौका था जब चार-धामों (केदारनाथ, बदरीनाथ, गंगोत्री तथा यमुनोत्री) की यात्रा तथा पूजा-अर्चना समय से काफी पहले ही बंद कर दी गयी। दरअसल विश्व प्रसिद्ध इन धामों के कपाट तीर्थाटन के लिए ग्रीष्मकाल में 6 महीनों (अप्रैल-सितंबर) के लिए खोल दिए जाते हैं और बर्फबारी तथा अत्यधिक ठंड के कारण शीतकाल (अक्तूबर-मार्च) में बंद कर दिए जाते हैं। ये तीर्थस्थल काफी ऊंचाई (लगभग 3000 मीटर से अधिक) पर हिमालयी ग्लेशियरों के काफी निकट हैं जिसके कारण ये प्राकृतिक आपदाओं की दृष्टि से बेहद संवेदनशील क्षेत्रों में आते हैं। केदारनाथ धाम (शिव के 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक) रुद्रप्रयाग जिले में, बदरीनाथ धाम चमोली जिले में तथा बाकी दो गंगोत्री व यमुनोत्री धाम उत्तरकाशी जिले में स्थित हैं। इन चारों धामों से चार प्रमुख नदियां (केदारनाथ से मंदाकिनी, बदरीनाथ से अलकनंदा, गंगोत्री से भागीरथी तथा यमुनोत्री से यमुना) निकलती हैं। अलकनंदा, मंदाकिनी तथा भागीरथी के समागम के बाद देवप्रयाग में ये तीन नदियां 'गंगा' कहलाती हैं। इन चार नदियों की भी दर्जनों सहायक नदियां हैं और हाल ही के

ग्लेशियर टूटने तथा बादल फटने की घटना के बाद अचानक आई बाढ़

10 हजार से अधिक लोगों की जिंदगी लील ली

कुछ वर्षों में बरसात के मौसम में अचानक बाढ़ जैसी स्थितियां पैदा होने से जन-धन की अपार हानि हो रही है। इसके पारिस्थितिकीय, पर्यावरणीय तथा भू-गर्भीय रूप से कई कारण बताए जाते हैं। उपरोक्त चार धामों पर उत्तराखंड की आधी आबादी की आर्थिकी टिकी हुई है क्योंकि इन धामों में प्रतिवर्ष अनुमानतः 18-20 लाख देशी-विदेशी तीर्थयात्री तथा पर्यटक आते हैं, जो उत्तराखंड की अर्थव्यवस्था का चक्का चलाते हैं। मगर उत्तराखंड की इस त्रासदी से यहां के पर्यटन उद्योग को काफी नुकसान उठाना पड़ा है।

आखिर उत्तराखंड में क्यों कहर बरपा रही है प्राकृतिक आपदाएं?

हालांकि उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों में प्राकृतिक आपदाओं का आना कोई नई बात नहीं है मगर अंतर यह है कि जहां पहले ये प्राकृतिक आपदाएं जन-धन को न्यूनतम नुकसान पहुंचाती थी, वहीं अब ये कहर बरपा रही हैं। उत्तराखंड में भूकम्प तथा भू-स्खलन जैसी आपदाएं तो पहले भी काफी देखने को मिलती थीं मगर हाल ही के 5-6 वर्षों में यहां बादल फटने की बढ़ती घटनाओं ने अधिक तबाही मचायी है। यद्यपि उत्तराखंड में प्राकृतिक आपदाओं के लिए पर्यावरणीय, भू-गर्भीय तथा मानव जनित कई कारण हैं, मगर इनके बारे में चर्चा करने से पूर्व हिमालय के उद्भव का इतिहास जानना जरूरी है। अब तक किए गए शोधों तथा अध्ययनों के अनुसार, आज से तकरीबन 4 करोड़ वर्ष पूर्व 'टर्शरी काल' में 'हिन्द भूखंड' से विशाल 'यूरेशियन भूखंड' के टकराने से हिमालय अस्तित्व में आया। 'प्लेट टेक्टॉनिक' सिद्धांत के अनुसार, पृथ्वी की ऊपरी कठोर सतह तकरीबन एक दर्जन भूखंडों में विभाजित है। सोलहवीं शताब्दी तक यही माना जाता था कि पृथ्वी मृत चट्टानों का ढेर है मगर बाढ़ की वैज्ञानिक खोजों से पता चला कि पृथ्वी जीवंत चट्टानों से बनी हुई है जो 'टेक्टॉनिक प्लेटों' के रूप में निरंतर गतिशील हैं। ये प्लेटें दो प्रकार की हैं : (1) 60-65 कि.मी. गहरी महाद्वीपीय प्लेटें तथा (2) 10-15 कि.मी. गहरी महासागरीय प्लेटें।

ये प्लेटें पृथ्वी के पिघले हुए क्रोड पर तैरती रहती हैं तथा हजारों कि.मी. चौड़ी होती हैं। महासागर, महाद्वीप, नदियां, पर्वत तथा मैदान आदि इन गतिशील प्लेटों पर सवार यात्रियों की तरह हैं। पृथ्वी के क्रोड की सक्रियता के कारण ये प्लेटें या भूखंड 1-10 सेमी. प्रतिवर्ष की दर से गतिशील रहते हैं। इस प्रक्रिया में कई चीजें देखने को मिलती हैं मसलन

जहां पहले ये प्राकृतिक आपदाएं जन-धन को न्यूनतम नुकसान पहुंचाती थी, वहीं अब ये कहर बरपा रही हैं

उत्तराखण्ड में पर्यटकों की आवक बढ़ने के साथ-साथ अनियोजित विकास की जो आंधी बही, वह हिमालयी क्षेत्र के पर्यावरण के लिए नुकसानदेह साबित हुई

जब ये प्लेटें एक-दूसरे से दूर-दूर होती जाती हैं तो नया 'मैग्मा' ऊपर आ जाता है और महासागरों के बीच पर्वत मेखलाएं बन जाती हैं कहीं-कहीं ये भूखंड या प्लेटें एक-दूसरे के सापेक्ष रगड़कर घिसती हैं तो बड़े-बड़े भ्रंश बन जाते हैं जैसे-कैलिफोर्निया में। अगर ये प्लेटें एक-दूसरे के नीचे आ जाती हैं तो वहां ज्वालामुखी अथवा पर्वत श्रृंखलाएं बन जाती हैं। हिमालय पर्वत श्रेणी का उदय भी कमोवेश इसी प्रकार की प्रक्रिया से हुआ है। दरअसल आज जहां हिमालय पर्वत तथा उत्तर का विशाल मैदान है वहां कभी 'टेथिस सागर' हुआ करता था। अब तक किए गए शोधों से यह बात उभरकर सामने आयी है कि लगभग 4 करोड़ वर्ष पूर्व हिंद भूखंड तथा यूरेशियन भूखंड (प्लेटों) की आपस में टक्कर के बाद टेथिस सागर सिकुड़ता चला गया तथा जो मैग्मा ऊपर आया वह धीरे-धीरे मोड़दार पर्वतों की एक श्रृंखला (हिमालय) के रूप में सामने आया। वैज्ञानिकों का मानना है कि 'टर्शरी काल' के उत्तरार्द्ध में लगभग 1 करोड़ वर्ष पूर्व मुख्य विवर्तनिक (टेक्टॉनिक्स) प्रक्रियाएं तो समाप्त हो गयीं, मगर आंशिक विवर्तनिक प्रक्रियाएं आज भी जारी हैं। हिंद प्लेट आज भी 5.5 मिली प्रतिवर्ष की गति से उत्तर में यूरेशियन प्लेट के अंदर धंस रही है जिससे हिमालय पर्वत की ऊंचाई प्रतिवर्ष 1-2 सेमी. बढ़ रही है तथा यह 2 सेमी. प्रति वर्ष की दर से उत्तर-पूर्व की ओर भी गतिशील है।

हिमालय पर्वत श्रृंखलाओं के नीचे थ्रस्ट अधिक सक्रिय होने के कारण यहां अधिक भूगर्भीय हलचलें होती रहती हैं, चूंकि हिमालय अभी अपने शैशवकाल में है तथा इसका निर्माण अभी भी जारी है। अतः यह क्षेत्र भूकम्पीय तथा भू-स्खलन जैसी प्राकृतिक आपदाओं की दृष्टि से दुनिया के सर्वाधिक संवेदनशील स्थानों में शामिल है। हिमालय के नीचे की 2500 किमी. लंबी 'डिकोलेमा' सतह की निरंतर सक्रियता के कारण यहां अक्सर 5 से 8 तीव्रता के भूकंप आते रहते हैं, छोटे-मोटे भूकम्पों से तो हिमालयी क्षेत्र का पाला हमेशा ही पड़ता रहता है। दरअसल, इन छोटे-बड़े भूकंपों से ही हिमालय की संवेदनशील पहाड़ियां जर्जर हो जाती हैं जिससे यहां बरसात या बादल फटने जैसी स्थितियों में व्यापक मात्रा में भू-स्खलन तथा बाढ़ जैसी समस्याएं पैदा हो जाती हैं। अब सवाल यह उठता है कि उत्तराखंड में पहले भी तो भारी बारिश होती थी तब न तो इतनी भयावह भू-स्खलन या बाढ़ की समस्या पैदा होती थी और न ही इतने व्यापक स्तर पर जन-धन की तबाही होती थी। दरअसल, प्रकृति अपने आप में संतुलन तथा व्यवस्था का बेजोड़ नमूना है, पहले उत्तराखण्ड के मध्य तथा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में पेड़-पौधों तथा वनस्पतियों की हरी-भरी प्रजातियों की ऐसी चादर फैली हुई रहती थी, जो न सिर्फ यहां की आबोहवा को शुद्ध बनाती थी बल्कि इनकी जड़ें भारी बरसात में भी मिट्टी को बांधे रखती थीं, मध्य हिमालयी क्षेत्रों में लगभग 1500 मी. से 3500 मी. की ऊंचाई तक बांज, बुरांस, देवदार, थुनेर, खर्स, मोरू, भोजपत्र, समेत कई प्रकार के पेड़ों

पर्वतीय क्षेत्र के प्रमुख पर्यटक स्थलों, तीर्थ स्थलों, शहरों एवं कस्बों में 'सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट, रि-साइक्लिंग ट्रीटमेंट प्लांट' के अलावा अन्य ऐसी तकनीकों/विधि-प्रविधियों का विकास किया जाना चाहिए जो कूड़ा-कचरा निस्तारण तथा पानी के शुद्धीकरण में सहायक हों

की बहुतायत थी, जिनकी मजबूत जड़ें मिट्टी को भूस्खलन तथा बाढ़ से बचाए रखती थीं तथा इसके मध्यम आकार की मजबूत पत्तियां जमीन में गिरकर चादर बनाती हुई बारिश के पानी की भी निकासी सुनिश्चित करती थीं। अनगिनत छोटे-बड़े वृक्ष प्रजातियों वाले ये घने जंगल तेज बारिश की रफ्तार को भी काफी हद तक थाम लेते थे। इसी प्रकार उच्च हिमालयी क्षेत्र में स्थित बुग्याल तथा पौधों की अनगिनत घनी प्रजातियां बर्फ तथा बरसात दोनों के पानी को काफी हद तक सोख लेती थीं। यही नहीं हिमालय की ये वनस्पतियां काफी हद तक हिमालय की जलवायु, मौसम, तापमान, जैवविविधता तथा पारिस्थितिकी तंत्र को भी संतुलित बनाए रखने में मदद पहुंचाती थीं। मगर उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में ब्रिटिश शासन के मध्यकाल तथा उत्तरार्द्ध में ही पारंपरिक जंगलों का विनाश शुरू हो गया था। ब्रिटिश प्रशासकों ने हिमालयी क्षेत्र में पारंपरिक वनों को काटकर चीड़ के जंगल बसाने शुरू कर दिए। दरअसल, चीड़ द्वारा उन्हें अपने व्यापारिक फायदे के लिए तारकोल, फर्नीचर तथा इमारती लकड़ी की प्राप्ति आसानी से हो सकती थी। फिर भी इस सबके लिए सिर्फ और सिर्फ ब्रिटिश नुमाइंदों को ही जिम्मेदार ठहराना ठीक नहीं होगा क्योंकि उन्होंने इस प्रकार की पहल सिर्फ मध्य हिमालयी क्षेत्र के निचले भागों में शुरू की थी, मगर आजादी के बाद (विशेषकर आर्थिक उदारीकरण के

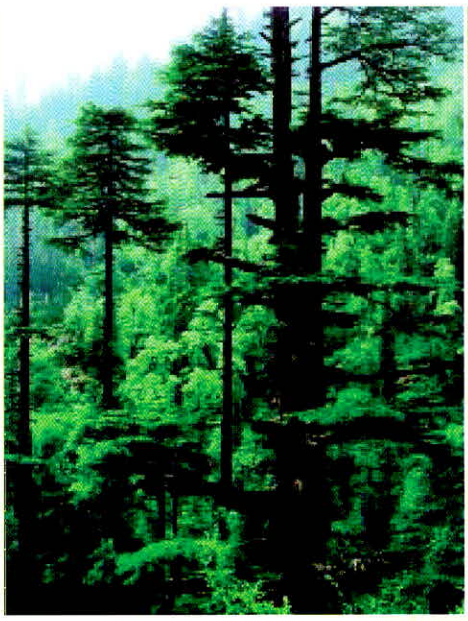

पारंपरिक वनों को काटकर चीड़ के जंगल बसाने शुरू कर दिए

बाद) इस क्षेत्र में व्यावसायिक फायदे तथा विकास के नाम पर बड़ी संख्या में पारंपरिक मिश्रित प्रजातियों वाले वनों का व्यापक स्तर पर विनाश किया गया, साथ ही संपूर्ण मध्य हिमालयी क्षेत्रों में अधिकाधिक चीड़ के पौधे रोपे गए। चीड़ के जंगल व्यावसायिक रूप से अवश्य फायदेमंद हो सकते हैं मगर पर्यावरणीय तथा जनहितों की दृष्टि से काफी नुकसानदायक होते हैं। इनकी जड़ें छोटी होती हैं तथा जड़ों का विस्तार भी काफी सीमित होता है जिसके चलते न तो इनकी जल-संग्रहण क्षमता अधिक होती है और न ही ये मिट्टी पर अपनी मजबूत पकड़ बनाने में सफल रहती हैं। नतीजतन ये बरसात में भू-स्खलन या बाढ़ जैसी स्थितियों को रोकने को बजाय बढ़ाने का ही काम करती हैं। दूसरा, चीड़ के पेड़ों से जमीन पर भारी मात्रा में गिरा 'पुआल' (सूखा चारा) न सिर्फ वन-अग्नि दुर्घटनाओं को आमंत्रण देता है बल्कि वनाग्नि के दावानल को और अधिक फैलाने में भी मदद करता है। तीसरा, चीड़ अपने आस-पास अन्य प्रजातियों के पेड़-पौधों को नहीं पनपने देता है। पर्यावरण विज्ञानियों की तमाम चेतावनियों के बावजूद यहां पारंपरिक वनों का ह्रास तथा चीड़ के जंगलों का लगातार विस्तार होता रहा है।

दूसरा उत्तराखण्ड में पर्यटकों की आवक बढ़ने के साथ-साथ अनियोजित विकास की जो आंधी बही, वह हिमालयी क्षेत्र के पर्यावरण के लिए नुकसानदेह साबित हुई। दरअसल उत्तराखण्ड के पर्वतीय राज्यों में सरकारी तथा निजी क्षेत्र के लोगों द्वारा विकास की जो नींव रखी गयी, वह वहां की संवेदनशील पारिस्थितिकी (पर्यावरणीय भौगोलिक तथा भू-गर्भीय मानकों के अनुरूप) तंत्र के अनुरूप बिल्कुल भी नहीं है और इससे पर्वतीय क्षेत्र के लोगों का समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास भी सुनिश्चित नहीं किया जा सकता है। गौरतलब है कि उत्तराखण्ड में छोटी-बड़ी 558 जल विद्युत परियोजनाएं प्रस्तावित हैं, जिनमें कुछ बन चुकी हैं कुछ निर्माणाधीन हैं तथा कुछ शुरू की जानी बाकी हैं। इन परियोजनाओं के लिए 1500 किमी. से अधिक सुरंगें बनायी जाएंगी। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजनाओं से ही लगभग 5000 वर्ग किमी. भूमि का खनन किया जाएगा तथा 4000 वर्ग किमी. जंगलों का सफाया हो जाएगा। हालांकि विरोध प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना से नहीं है क्योंकि पहाड़ के दूर-दराज के गांवों को सड़क-परिवहन से जोड़ना जरूरी भी है। दरअसल, विरोध इस बात का है कि सड़क बनाने के लिए जो तकनीकें तथा अन्य प्रकार के अव्यवस्थित व अनियोजित तौर-तरीके अपनाए जा रहे हैं वे पर्वतीय क्षेत्रों की भौगोलिक तथा पारिस्थितिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं। केन्द्र सरकार ने उत्तराखण्ड की जल-विद्युत परियोजनाओं से 40000 मेगावाट से लेकर 50000 मेगावाट तक विद्युत उत्पादन का लक्ष्य रखा है ताकि भारत के उत्तरी राज्यों की बढ़ती ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। यही नहीं इस विद्युत का कुछ हिस्सा भारत के पड़ोसी देशों को भी बेचा जा सकता है, साथ ही कुछ परियोजनाओं से सिंचाई तथा पेयजल की समस्याओं का निदान भी किया जाएगा, जैसे टिहरी जल विद्युत परियोजना। मगर क्या इन सब फायदों के लिए उत्तराखण्ड की समृद्ध पारिस्थितिकी तथा जल-जंगल-जमीन की कुर्बानी देना बुद्धिमत्तापूर्ण कदम होगा? हालांकि छोटे पनघटों तथा छोटी जल विद्युत परियोजनाओं (लगभग 100 मेगावाट तक) की दृष्टि से उत्तराखण्ड बेहद सुरक्षित माना जाता है तथा इससे उत्तराखण्ड में 20000 मेगावाट से अधिक विद्युत का उत्पादन किया जा सकता है। पर्वतीय क्षेत्रों में झरनों तथा नालों से चलने वाले पनघटों से न सिर्फ आटा पीसने की चक्कियां चलायी जा सकती हैं बल्कि इनमें थोड़ी सी अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करके 200 से 500 आबादी वाले एक पूरे गांव को भी बिजली से रोशन किया जा सकता है। मगर

कुछ तथ्य ऐसे भी

- उत्तराखण्ड का लगभग 80 फीसदी भाग पहाड़ों से घिरा हुआ है। समुद्र तल से 200 से 650 मीटर का क्षेत्र भाभर तथा तराई, 650 मीटर से 1000 मीटर का क्षेत्र वाह्य-हिमालय (शिवालिक पहाड़ियां), 1000-3000 मीटर का क्षेत्र मध्य हिमालय (लघु हिमालय) तथा 3000 मीटर से अधिक ऊंचाई वाला क्षेत्र आंतरिक हिमालय (महान हिमालय) कहलाता है।
- उत्तराखण्ड के कुल भौगोलिक क्षेत्र 64.79 प्रतिशत भू-भाग पर वन हैं, राज्य के क्षेत्रफल में से 46 प्रतिशत पर रिज़र्व फॉरेस्ट हैं तथा 19 प्रतिशत भू-भाग पर संरक्षित वन हैं। राज्य में सघन वन मात्र 7.5 भूमि पर तथा मध्यम सघन वन 26 प्रतिशत भूमि पर स्थित हैं।
- राज्य में प्रतिवर्ष लगभग 7000 करोड़ घनमीटर पानी बरसता है तथा उत्तराखण्ड की नदियों में लगभग 2500 करोड़ घनमीटर पानी बहता है।
- देश में पाए जाने वाले स्तनपायीयों में 25 प्रतिशत उत्तराखण्ड में हैं। क्षेत्र में 10 हजार पादप प्रजातियां, 3784 जंतु प्रजातियां, 1000 चिड़िया प्रजातियां, 816 वृक्ष प्रजातियां, 675 जंगली फल, 1748 प्रजातियों के औषधीय पौधे तथा 439 तितली प्रजातियां पायी जाती हैं।
- पिछले 100 सालों में राज्य के औसत तापमान में लगभग 1°C की वृद्धि हुई है तथा इस दौरान हिमालयी क्षेत्र के ग्लेशियरों का 10 फीसदी तक ह्रास हुआ है।

- उत्तराखण्ड "आपदा प्रबंधन, न्यूनीकरण तथा निराकरण अधिनियम-2005" के अंतर्गत आपदा प्रबंधन विभाग बनाने वाला देश का प्रथम राज्य है।

टिहरी जल विद्युत परियोजना

जब मेट्रो ट्रेन के लिए सुरंग बनायी जा रही थी तो इसमें पारंपरिक विस्फोटों के बजाय विदेशों से मंगायी गयी अत्याधुनिक ड्रिलिंग मशीनों का सहारा लिया गया

सार्वजनिक स्थानों पर तथा नदियों में नॉन-बायोडिग्रेडेबल कचरा एवं अपशिष्ट पदार्थों का विसर्जन कानूनी रूप से प्रतिबंधित कर देना चाहिए

या रेतीले पानी से लगाया जाता है। ऐसे में यहां पर जायज़-नाजायज़ तरीकों से सैकड़ों बड़े-भवनों का निर्माण आखिर क्या सोच कर किया गया तथा किसकी इजाज़त पर किया गया? उत्तराखंड के चार धामों के आस-पास ऐसे कई बड़े-बड़े भवनों का निर्माण पर्यावरणीय मानकों को ताक पर रखकर सरकारी उपेक्षा तथा अत्याधुनिकता की चकाचौंध में पर्वतीय क्षेत्रों में पारंपरिक पनघटों का अस्तित्व मिट सा गया है।

पर्वतीय क्षेत्रों में ऊंचे-ऊंचे भवनों का निर्माण और वह भी नदी के आस-पास के क्षेत्रों में समझ से परे लगता है। केदारनाथ की ही बात करें तो खुद 'केदार' का अर्थ ही 'दलदल' या रेतीले पानी से लगाया जाता है। ऐसे में यहां पर जायज़-नाजायज़ तरीकों से सैकड़ों बड़े-भवनों का निर्माण आखिर क्या सोच कर किया गया तथा किसकी इजाज़त पर किया गया? उत्तराखंड के चार धामों के आस-पास ऐसे कई बड़े-बड़े भवनों का निर्माण पर्यावरणीय मानकों को ताक पर रखकर किया गया है जबकि इनमें से कई भाग नेशनल पार्कों, वन्य-जीव अभयारण्यों तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की विरासत सूची (नंदा देवी बायोस्फीयर/फूलों की घाटी) तक में शामिल हैं। केदारनाथ जो चारों ओर से बड़े जल स्रोतों से घिरा है तथा स्वयं जिसके नीचे पानी व दलदली भूमि है वहां पर व्यापक रूप से मानव बस्ती तथा बड़े भवनों का निर्माण पहले से ही प्राकृतिक आपदा को आमंत्रण देने के समान था। मगर समय से पहले सजग होना न तो सरकार को मंजूर है और न ही आम-जनमानस को, जबकि पर्यावरण विज्ञानी तथा भू-वैज्ञानिक पिछले काफी समय से इस बात की चेतावनी देते आ रहे थे कि विकास के नाम पर पर्वतीय क्षेत्रों की पारंपरिक प्राकृतिक विरासत पर जिस तरह से मानवीय हस्तक्षेप बढ़ रहा है वह इस क्षेत्र को धीरे-धीरे बारूद के ढेर पर ले जा रहा है। पर्वतीय क्षेत्रों में हाल ही के वर्षों में 'ब्लैक कार्बन' का उत्सर्जन बढ़ना भी पर्यावरण के लिए खतरनाक संकेत है। यह डीज़ल, पेट्रोल, केरोसिन तथा लकड़ी उत्पादों को जलाने से अधिक पैदा होता है। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में पिछले एक दशक में वाहनों की संख्या में 4 गुनी वृद्धि हो चुकी है और 60 हजार से अधिक छोटे-बड़े वाहन सड़कों पर दौड़ते हैं (यात्राकाल में तो यह संख्या 2 लाख से ऊपर पहुंच जाती है) ऊपर से सरकार ने पिछले 4-5 सालों से तमाम पर्यावरणीय मानकों को धता बताते हुए कई कंपनियों को यात्राकाल के दौरान नियमित हवाई सेवाएं उपलब्ध कराने की इजाज़त भी दे रखी है। सिर्फ केदारनाथ की यात्रा के लिए ही 7 हेलीकॉप्टर कंपनियां प्रतिदिन 100 से अधिक उड़ानें भरती हैं। निश्चित रूप से इन चीजों से होने वाले कार्बन उत्सर्जन का क्षेत्र के पर्यावरण, जैवविविधता तथा पारिस्थितिक तंत्र पर कुछ न कुछ प्रतिकूल असर अवश्य पड़ता होगा। वैज्ञानिकों की मानें तो ब्लैक कार्बन जलने के बाद ऊपर उठता है और ग्रीन हाउस गैसों की तरह धरती के तापमान को बढ़ा देता है। बढ़े तापमान से गर्म हवाएं मैदानी क्षेत्रों की अपेक्षा ऊपरी ऊंचाई वाले स्थानों पर अपना अधिक प्रभाव दिखाती हैं और इनका सर्वाधिक बुरा असर बुग्यालों तथा ग्लेशियरों पर पड़ता है। ताजा शोध बताते हैं कि पिछले दो दशकों में उत्तराखण्ड के हिमालयी क्षेत्रों में ग्लेशियरों के पिघलने की दर बढ़ी है, बुग्यालों का दायरा सिमटने लगा है, पारंपरिक पहाड़ी कृषि तथा बागवानी खत्म हो रही है तथा इस दौरान पेड़-पौधों तथा प्राणियों की कई प्रजातियां खत्म हो चुकी हैं अथवा खत्म होने की कगार पर हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में मौसम, जलवायु तथा अन्य प्राकृतिक गतिविधियों में अनियमितता आयी है और अचानक तथा बेमौसमी बारिश भी इसी का एक रूप है।

मगर क्या उपरोक्त सभी विसंगतियों के लिए सिर्फ और सिर्फ ग्लोबल वार्मिंग, वैश्विक जलवायु परिवर्तन तथा अल-निनो या ला-निनो जैसे प्रभावों को ही जिम्मेदार ठहराना तर्कसंगत होगा? निश्चित रूप से इन सबके लिए समग्र रूप से कई कारण जिम्मेदार हैं और यहां की समृद्ध पारिस्थितिकी व्यवस्था में अनुचित मानवीय हस्तक्षेप एवं गतिविधियां भी एक बड़ा कारण हैं। विकास के नाम पर यहां जो अंधेरगर्दी मची है तथा इकोसिस्टम के साथ अनुचित छेड़-छाड़ की जा रही है उसे कदापि न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता है। राज्य में बड़ी परियोजनाओं के क्रियान्वयन में एक और बात देखी जाती है और वह है विस्थापन, पुनर्वास तथा प्राकृतिक संपदा से हुए नुकसान।

उत्तराखण्ड में प्राकृतिक आपदाओं से बचाव के उपाय

- माना कि आज विकास जरूरी है, मगर पर्यावरण संरक्षण व संवर्द्धन उससे भी अधिक जरूरी है क्योंकि यह न सिर्फ हमारे बल्कि संपूर्ण जीव-जगत के अस्तित्व से जुड़ा प्रश्न है। अगर उत्तराखण्ड में पर्यावरण तथा विकास को एक-दूसरे के पूरक के रूप में आगे बढ़ाना है तो 'पर्यावरण एवं विकास' से संबंधित ऐसी नीतियां बनानी पड़ेगी, जो यहां की भौगोलिक स्थिति, पारिस्थितिकी तथा जैवविविधता के अनुकूल हों, साथ ही इन नीतियों का सफल क्रियान्वयन, प्रबंधन तथा मूल्यांकन करना भी बेहद जरूरी है।
- प्राकृतिक व्यवस्था में अनुचित छेड़-छाड़ के बजाय उसके साथ सहजीवन जीना चाहिए और उसके संरक्षण तथा संवर्द्धन में सहयोगी बनना

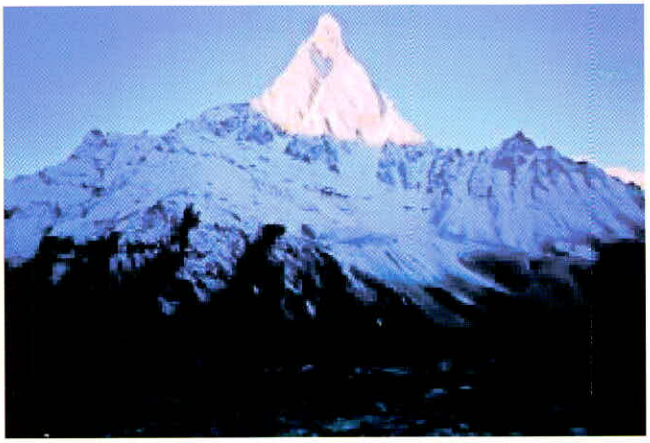

भू-गर्भीय तथा पारिस्थितिकी की दृष्टि से अति संवेदनशील क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना चाहिए तथा वहां किसी प्रकार की बड़ी योजनाओं, परियोजनाओं एवं भवनों या रिहायशी बस्तियों तथा खनन कार्यों को पूर्णतः प्रतिबंधित कर देना चाहिए

चाहिए।

• उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में प्रदूषण फैलाने वाली औद्योगिक इकाइयों अथवा बड़ी परियोजनाओं के बजाय यहां के प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित लघु, कुटीर तथा मझोले उद्योगों का विकास करना चाहिए। बागवानी, फल व सब्जी उत्पादन, फ्लोरीकल्चर, मक्खी पालन, रेशम कीट-पालन, जड़ी-बूटी उत्पादन, पहाड़ी मोटे अनाजों का उत्पादन, आयुर्वेदिक दवाइयां बनाना, खाद्य-प्रसंस्करण उद्योग (जूस-जैली-स्क्वैश-अचार, नमकीन- चिप्स-अर्क-इत्र इत्यादि का उत्पादन) हथकरघा उद्योग (ऊई व ऊन की कताई छंटाई तथा उससे निर्मित कपड़े, दरियां, गलीचे इत्यादि) तथा पशुपालन पर आधारित उद्योग (भेड़ पालन, बकरी पालन, दुग्ध-उत्पादन आदि) यहां की पर्यावरणीय व भौगोलिक परिस्थितियों के बेहद अनुकूल हैं। इससे क्षेत्र के प्रत्येक आदमी को स्थायी रोजगार भी प्राप्त होगा और समग्र सामाजिक-आर्थिक विकास भी सुनिश्चित हो पाएगा। इस मायने में सरकार पर्वतीय क्षेत्रों के लिए अलग उद्योग नीति बना सकती है और इन नीतियों के सफल प्रबंधन व क्रियान्वयन के लिए ऋण, रियायतें, प्रोत्साहन, प्रशिक्षण, मार्केटिंग, अनुदान एवं तकनीकी संसाधन मुहैया करवा सकती है। राज्य के किस भाग में किस उद्यम की अधिक संभावनाएं हैं इसका व्यापक सर्वेक्षण करने के बाद कार्य योजना तैयार की जाए। गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों तथा मूलभूत सुविधाओं से वंचित लोगों को चिन्हित करके इन उद्यमों की स्थापना के लिए सरकार द्वारा विशेष रियायतें तथा सुविधाएं दी जानी चाहिए।

• 'पर्यटन-उद्योग' भी राज्य का प्रमुख उद्योग है। मगर पर्यटन उद्योग के कारण भी पर्वतीय क्षेत्रों के पर्यावरणीय हितों को बेहद अधिक नुकसान पहुंचा है इसलिए सरकार को चाहिए कि वह आगे से बेहद सोच-समझकर 'पर्यटन नीति' बनाए जो यहां के

उत्तराखण्ड की बड़ी प्राकृतिक आपदाएं

• 1868 : बादल फटने से चमोली स्थित 'बिरही' की सहायक नदी में भू-स्खलन से 73 मरे।

• 19 सितंबर, 1880 : नैनीताल में हुए भू-स्खलन से 151 लोगों की मौत।

• 1893-94 : बिरही नदी में चट्टान गिरने से बड़ी झील बनी, जिसके फूटने से हरिद्वार तक 80 लोगों की मौत तथा संपत्ति का नुकसान।

• 1951 : सतपुली (पौड़ी) में नयार नदी में आयी आकस्मिक बाढ़ से 20 बसें बहीं, लगभग 65 लोगों की मौत।

• 1957 : भू-स्खलन से 'कपकोट के सुडिम' (बागेश्वर) में 12 लोगों की मौत।

• 1970 : अलकनंदा में बनी झील के फूटने से निचली घाटियों में 70 लोगों की मौत 'बेलाकूची' (चमोली) में बाढ़ से 30 लोगों की मौत। झढ़कुला, सलूड़ डुंग्रा, बरोसी तथा मोल्टा गांवों में भू-स्खलन से 27 लोगों की मौत।

• 1973 : दशोली ब्लॉक (चमोली) के 'सैकोट' गांव में बादल फटने से 11 लोगों की मौत।

• 1977 : भू-स्खलन से 'तवाघाट' में 44 लोगों की मौत।

• अगस्त 1978 : कनोडिया गांव (टिहरी) के पास झील फटने से भागीरथी घाटी में 25 लोगों की मौत।

• 1979 : कौंथा गांव (रुद्रप्रयाग) में भारी भू-स्खलन से 50 लोगों की मौत।

• 23 जून, 1980 : 'ज्ञानसू' कस्बे (उत्तरकाशी) में भारी भू-स्खलन से 45 लोगों की मौत।

• 9 सितंबर, 1980 : कन्नौड़िया गांव (उत्तरकाशी) के पास सड़क निर्माण कार्य के दौरान अचानक चट्टान खिसकने से 15 अधिकारी व कर्मचारियों समेत 22 लोगों की मौत।

• 1983 : 'कर्मी गांव' (बागेश्वर) में एक नाले में अचानक आयी बाढ़ से 37 लोगों की मौत।

• 1990 : 'नीलकंठ' (ऋषिकेश) में भारी भू-स्खलन से 100 लोगों की मौत।

• अगस्त 1991 : चमोली के विभिन्न गांवों में बादल फटने व भू-स्खलन से 29 लोगों की मौत।

• 20 अक्तूबर, 1991 : उत्तरकाशी जिले में आए विनाशकारी भूकंप से 150 लोगों की मौत।

• 1996 : पिथौरागढ़ के बेलकोट तथा रैतोली में बादल फटने से 16 लोगों की मौत।

• जुलाई-अगस्त 1998 : ऊखीमठ क्षेत्र के मनसूना-बुरूवा-रांऊलैक (रुद्रप्रयाग) में बादल फटने तथा भू-स्खलन की घटना में 120 लोगों की जानें गयी। 17 अगस्त को 'मालपा' (पिथौरागढ़) में भू-स्खलन से 210 लोग जिंदा दफन।

• 28 मार्च, 1999 : चमोली तथा रुद्रप्रयाग जिले में आए भीषण भूकंप से 100 लोगों की मौत।

• 2000 : छुड़की गांव (पिथौरागढ़) में भू-स्खलन से 19 लोगों की मौत।

• 2001 : बूढ़ाकेदार (टिहरी) क्षेत्र में बादल फटने से 16 लोगों की मौत।

• 16 जुलाई, 2001 : फाटा (रुद्रप्रयाग) क्षेत्र में भू-स्खलन से 40 लोगों की मौत।

• अगस्त 2002 : बाल-गंगा घाटी तथा घनसाली (टिहरी) में बादल फटने व भू-स्खलन से 50 लोगों की मौत।

• 2004 : लामबगड़ तथा मारवाड़ी (जोशीमठ) में बादल फटने व भू-स्खलन से 24 लोगों की मौत।

• 2007 : देवपुरी तथा बरम (कुमाऊं) में बादल फटने से 30 लोगों की मौत।

• 2008 : घांघरिया, हेमकुण्ड (चमोली) में ग्लेशियर टूटने से 15 लोगों की मौत।

• 2010 : सुमगढ़ (बागेश्वर) में एक स्कूल के पास भू-स्खलन से 18 बच्चों की मौत तथा चमोली, पिथौरागढ़, बागेश्वर व उत्तरकाशी में बादल फटने व भू-स्खलन से 45 लोगों की मौत।

• 2012 : चुन्नी-मंगोली (ऊखीमठ) गांव में बादल फटने से 100 लोगों की मौत।

पर्यटक स्थलों तथा धार्मिक स्थानों को शुद्ध तथा साफ रखना पर्यावरणीय हितों की दृष्टि से बेहद जरूरी है

सरकार को चाहिए कि वह पर्वतीय क्षेत्रों के लिए जो भी नीतियां बनाए उसमें पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, आपदा-प्रबंधन-विभाग, मौसम विज्ञान विभाग, कृषि मंत्रालय व कृषि विभाग, खाद्य प्रसंस्करण विभाग, कृषि एवं वानिकी विश्वविद्यालय तथा इससे संबंधित तमाम अन्य संस्थाएं परस्पर समन्वय, सहयोग तथा सहभागिता से कार्य करें

पर्यावरणीय एवं भौगोलिक हितों के अनुकूल हो। संवेदनशील पर्यटन एवं धार्मिक तीर्थस्थलों तथा बड़ी नदियों के किनारों पर बड़े व भारी निर्माण कार्यों पर रोक लगा देनी चाहिए। पर्यटकों, तीर्थ यात्रियों तथा स्थानीय लोगों के लिए पर्यावरणीय मानकों का पालन अनिवार्य करने के लिए कानूनी प्रावधान बनाए जाने चाहिए ताकि स्वस्थ पर्यटन तथा इकोटूरिज़्म की संकल्पना को मजबूत किया जा सके। उक्त स्थानों पर सी.सी.टी.वी. की मदद से निगरानी रखनी चाहिए तथा राज्य सरकार एवं केन्द्रीय निकाय की ऐसी ब्रांच/कार्यालय होना जरूरी है जो पर्यावरणीय पहलुओं की निगरानी करे, लोगों को आवश्यक दिशा-निर्देश दें, जन-जागरूकता का काम करें, पर्यावरण मानकों का पालन न करने वालों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करें तथा क्षेत्र के पर्यावरण से जुड़े तमाम पहलुओं की जानकारी समय-समय पर सरकार को मुहैया करवाता रहे। पॉलीथीन तथा अन्य प्रकार का नॉन-बायोडिग्रेडेबल कचरा हिमालयी क्षेत्र के पर्यावरण के लिए लंबे समय से मुसीबत का पर्याय बना हुआ है। सरकार को चाहिए कि वह या तो इसके उचित निस्तारण की व्यवस्था करे अथवा क्षेत्र में इसके उपयोग पर पाबंदी लगाए, सार्वजनिक स्थानों पर तथा नदियों में नॉन-बायोडिग्रेडेबल कचरा एवं अपशिष्ट पदार्थों का विसर्जन कानूनी रूप से प्रतिबंधित कर देना चाहिए तथा इनके लिए कुछ स्थान निर्दिष्ट कर दिए जाने चाहिए। पर्वतीय क्षेत्र के प्रमुख पर्यटक स्थलों, तीर्थ स्थलों, शहरों एवं कस्बों में 'सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट, रि-साइक्लिंग ट्रीटमेंट प्लांट' के अलावा अन्य ऐसी तकनीकों/विधि-प्रविधियों का विकास किया जाना चाहिए जो कूड़ा-कचरा निस्तारण तथा पानी के शुद्धीकरण में सहायक हों। इससे नदियों में नालों के माध्यम से जाने वाले अपशिष्ट पदार्थों को रोका जा सकता है। पर्यटक स्थलों तथा धार्मिक स्थानों को शुद्ध तथा साफ रखना पर्यावरणीय हितों की दृष्टि से बेहद जरूरी है। इसके अलावा स्वस्थ पर्यटन तथा पर्यावरण मानकों के प्रति जागरूकता फैलाने के लिए पोस्टरों, होर्डिंग्स, रैलियों, सेमिनारों, कार्यशालाओं तथा प्रिंट व इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का भी सहारा लिया जा सकता है।

• भू-गर्भीय तथा पारिस्थितिकी की दृष्टि से अति संवेदनशील क्षेत्रों को चिन्हित किया जाना चाहिए तथा वहां किसी प्रकार की बड़ी योजनाओं, परियोजनाओं एवं भवनों या रिहायशी बस्तियों तथा खनन कार्यों को पूर्णतः प्रतिबंधित कर देना चाहिए। संरक्षित या आरक्षित क्षेत्रों (राष्ट्रीय पार्क, वन्य जीव अभयारण्य) में भी उक्त प्रकार की सभी औद्योगिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों को बंद कर देना चाहिए।

पर्वतीय क्षेत्रों में मौसम जलवायु तथा पारिस्थितिकी से संबंधित क्षेत्र में गहन शोध, अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक है। मौसम प्रणाली को भी हाईटेक करना जरूरी है।

• पर्वतीय क्षेत्रों में चीड़ के बजाय पारंपरिक वनस्पतियों वाले मिश्रित वनों के विकास व विस्तार के लिए अधिकाधिक प्रयास करने चाहिए। इसके लिए दीर्घकालिक कार्य योजना बनायी जानी चाहिए और पर्यावरण तथा वन मंत्रालय, वन-विभाग, ग्राम-पंचायतों तथा आम नागरिकों को आपसी सहयोग, सहभागिता तथा समन्वय से इस कार्य योजना का सफल क्रियान्वयन सुनिश्चित करना चाहिए। सिर्फ वृक्षारोपण करना ही काफी नहीं है बल्कि उनके पलने-बढ़ने की जिम्मेदारी भी उक्त निकायों को सुनिश्चित करनी चाहिए।

• क्षेत्र में बड़ी जल-विद्युत परियोजनाओं का क्रियान्वयन नहीं किया जाना चाहिए। इसके बजाय छोटी-छोटी जल-विद्युत परियोजनाओं का निर्माण एवं आधुनिक तकनीकों से लैस पनघटों के व्यापक ढांचे का विकास अधिक फायदेमंद है। पर्वतीय क्षेत्रों में सोलर एनर्जी, पवन ऊर्जा, बायो एनर्जी आदि की भी संभावनाएं मौजूद हैं। अतः इन अपारंपरिक ऊर्जा स्रोतों का विकास करना भी जरूरी है। जो शहर/कस्बे बड़ी नदियों के किनारे बसे हैं वहां पर मजबूत तटबंध बनाए जाने चाहिए। साथ ही पानी के प्रबंधन व वितरण की उचित व्यवस्था के लिए नयी तकनीकी/विधियों-प्रविधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

• पर्वतीय क्षेत्रों में मौसम जलवायु तथा पारिस्थितिकी से संबंधित क्षेत्र में गहन शोध, अध्ययन एवं विश्लेषण आवश्यक है। मौसम प्रणाली को भी हाईटेक करना जरूरी है।

• क्षेत्र में प्रधानमंत्री ग्राम-सड़क योजना तथा अन्य प्रकार की परियोजनाओं में जिस प्रकार बड़े-बड़े डायनामाइट विस्फोटों का सहारा लिया जा रहा है या पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाली अन्य प्रकार की गतिविधियों का संचालन किया जा रहा है, उसे बंद करके उसकी जगह पर अन्य अत्याधुनिक तकनीकों/विधियों- प्रविधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए ताकि पर्यावरण की क्षति को न्यूनतम किया जा सके। वास्तुकला तथा ऐतिहासिक व पुरातात्विक दृष्टि से नायाब इमारतों को समेटे एवं संवेदनशील आबादी वाले दिल्ली शहर में मेट्रो ट्रेन परियोजना का सफल निर्माण इसका शानदार उदाहरण है जिसमें पर्यावरण, आबादी तथा इमारतों को क्षति पहुंचाए बगैर अत्याधुनिक तकनीकों तथा विधियों से निर्माण कार्यों को अंजाम दिया

गया। पुरानी दिल्ली के 30 मीटर नीचे जब मेट्रो ट्रेन के लिए सुरंग बनायी जा रही थी तो इसमें पारंपरिक विस्फोटों के बजाय विदेशों से मंगायी गयी अत्याधुनिक ड्रिलिंग मशीनों का सहारा लिया गया। पर्वतीय क्षेत्रों में अति संवेदनशील इलाकों में सड़क परिवहन के बजाय रज्जु मार्गों तथा रोपवे या ट्रॉलियों की सहायता से भी नियमित आवागमन सुनिश्चित किया जा सकता है।

सरकार को चाहिए कि वह पर्वतीय क्षेत्रों के लिए जो भी नीतियां बनाए उसमें पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, आपदा-प्रबंधन-विभाग, मौसम विज्ञान विभाग, कृषि मंत्रालय व कृषि विभाग, खाद्य प्रसंस्करण विभाग, कृषि एवं वानिकी विश्वविद्यालय तथा इससे संबंधित तमाम अन्य संस्थाएं परस्पर समन्वय, सहयोग तथा सहभागिता से कार्य करें। मौसम-विभाग को भी हाइटेक करना जरूरी है ताकि समय पर प्राकृतिक आपदाओं की सूचनाएं एवं जलवायु व मौसम संबंधी विस्तृत जानकारियां लोगों को उपलब्ध करायी जा सकें।

• यद्यपि उत्तराखण्ड देश का पहला राज्य है जहां नवंबर 2005 में आपदा प्रबंधन, न्यूनीकरण एवं निवारण अधिनियम के अंतर्गत आपदा-प्रबंधन विभाग बनाया गया है। अतः अब समय आ गया है जब राज्य सरकार को आपदा प्रबंधन विभाग का पुनर्गठन करके तात्कालिक तथा दीर्घकालिक रूप से प्रभावी नीतियां बनानी चाहिए तथा उनके सही क्रियान्वयन के लिए कारगर रणनीति बनानी चाहिए। राज्य में पेशेवर, प्रशिक्षित तथा अत्याधुनिक साजो-सामान से लैस आपदा-प्रबंधन टीम बनायी जानी बेहद जरूरी है। आपदा-प्रबंधन टीम को कई दस्तों में बांटा जा सकता है जो न सिर्फ लोगों को आपात स्थितियों से बचने के लिए आपदा-प्रबंधन के गुर सिखाये बल्कि पर्यावरणीय हितों के प्रति भी जागरूक करने में अपनी अहम भूमिका निभाएं।

• किसी भी औद्योगिक इकाई/योजना - परियोजना से अगर पर्यावरण को किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचती है तो संबद्ध उद्यमी/संस्था के लिए क्षतिपूर्ति के मानक अनिवार्य रूप से लागू कर देने चाहिए। क्षतिपूर्ति न होने की स्थिति में कार्यदायी निकाय के प्रति कठोर कानूनी कार्रवाई का प्रावधान किया जाना चाहिए। जल-जंगल तथा जमीन के संरक्षण के लिए अधिकाधिक पारंपरिक वनों का विकास व विस्तार जरूरी है तथा प्राकृतिक जल स्रोतों का उचित संरक्षण-संवर्द्धन व प्रबंधन भी जरूरी है।

• सरकार को चाहिए कि वह पर्वतीय क्षेत्रों के लिए जो भी नीतियां बनाए उसमें पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, आपदा-प्रबंधन-विभाग, मौसम विज्ञान विभाग, कृषि मंत्रालय व कृषि विभाग, खाद्य प्रसंस्करण विभाग, कृषि एवं वानिकी विश्वविद्यालय तथा इससे संबंधित तमाम अन्य संस्थाएं परस्पर समन्वय, सहयोग तथा सहभागिता से कार्य करें। मौसम-विभाग को भी हाइटेक करना जरूरी है ताकि समय पर प्राकृतिक आपदाओं की सूचनाएं एवं जलवायु व मौसम संबंधी विस्तृत जानकारियां लोगों को उपलब्ध करायी जा सकें।

संपर्क करें :

श्री शंकर प्रसाद तिवारी 'विनय' केयर ऑफ फ्रेंण्डस बुक डिपो, 'यूनीवर्सिटी गेट के सामने', श्रीनगर गढ़वाल, जनपद पौड़ी, गढ़वाल-246 174, (उत्तराखण्ड)